International Journal of Multidisciplinary Education and Research
www.educationjournal.in
ISSN: 2455-4588
Received: 26-11-2022, Accepted: 12-12-2022, Published: 28-12-2022
Volume 7, Issue 4, 2022, Page No. 50-55

औपनिवेशिक भारत में साम्यवादी दलः विचारधार, कार्यक्रम एवं नीतियां

डॉ अनुराग पांडेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत लेख पराधीन भारत में साम्यवादी दल (भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी) की विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रम, विचारधारा एवं नीतियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। लेख मुख्य रूप से सन 1920 के बाद के कालखंड का अध्ययन है, जिसमें साम्यवादी दल की स्थापना के कारण, उनके रुसी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से सम्बन्ध, कांग्रेस समाजवादी दल में भूमिका और विभिन्न आंदोलनों का आलोचनात्मक अध्ययन करता है। स्वतंत्रतापूर्व हुए विभिन्न घटनाक्रमों, आंदोलनों में साम्यवादी दल कैसी भूमिका अदा करता है, ये प्रश्न इस लेख का केंद्र बिंदु है और साम्यवादी दल की कई मिथ्या धारणाओं का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अंत में लेख ये जानने का प्रयास करता है के साम्यवादी दल की विचारधारा, कार्यक्रम, नीतियां कितनी भारतीय और देश हित में रहीं हैं।

मूल शब्दः भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, कांग्रेस समाजवादी दल, भारत छोड़ो आंदोलन, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल, मुस्लिम लीग, तेभागा आंदोलन, आंध्रा आंदोलन, संविधान सभा

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अथवा दल (भाकपा)की स्थापना स्वतंत्रता पूर्व 26 दिसंबर सन 1925 में कानपुर में हुई थी और इसकी स्थापना का मुख्य श्रेय मानवेन्द्र नाथ रॉय (एम. एन. रॉय)को दिया जाता है, एम एन रॉय के साथ अवनि मुखर्जी, शफ़ीक़ सिद्दीकी और मोहम्मद अली इत्यादि ने भी साम्यवादी दल बनाने में अहम भूमिका निभाई थी। हालाँकि भाकपा की स्थापना के साथ विवाद भी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भाकपा दो भागों में विभाजित हुई, एक भाकपा और दूसरी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) जो सन 1964 में भाकपा से अलग हुई थी। माकपा का मानना था के भारत में साम्यवादी दल की स्थापना सन 1920 में हुई थी ना कि 1925 में और आज भी माकपा इसी स्थापना दिवस को सच मानते हुए तर्क देती है के 1920 का दौर भारतीय राजनीती में उथल–पुथल भरा दौर था। उस दौर में कुछ प्रमुख आंदोलनों के कारण लोगों में जागरूकता आई जिसने कम्युनिस्ट आंदोलन को मजबूती दी और कम्युनिस्ट दल की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। इन आंदोलनों में प्रमुख सन 1917 की रूस की बोल्शेविक क्रांति, ख़िलाफ़त आंदोलन, असहयोग आंदोलन, प्रथम विश्व युद्ध के बाद की स्थिति (जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजीपतियों के वर्चस्व का वर्चस्व बढ़ाया) और नतीजन मजदूर वर्ग के मध्य रोष और त्रासदी उत्पन्न हुई जिसने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना को सुलभ किया।[1]

इन दोनों दलों के मध्य साम्यवादी दल की स्थापना के प्रति मतभेद है लेकिन ये माना जा सकता है के सन 1920 के आस पास साम्यवादी दल की स्थापना प्रारंभ हो चुकी थी। इसका प्रमाण रूस में मौजूद दूसरी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल कांग्रेस से मिलता है जब भारत के कम्युनिस्ट इसी कांग्रेस से प्रभावित होकर एक भारतीय कम्युनिस्ट दल के निर्माण में लग गए। अतः ये कहा जा सकता है के सन 1920 से ही भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना के प्रयास शुरू किए जा रहे थे जिसको अमली जामा सन 1925 में पहनाया गया जब एम. एन. रॉय ने भाकपा की स्थापना करि। एम. एन. रॉय ने साम्यवादी दल की जड़ों को भारत में मजबूत करने का प्रयास किया और देश के विभिन्न राज्यों में जो साम्यवादी विचारधारा के समर्थक या अपने–अपने क्षेत्रों में साम्यवादी विचारों को वैधानिकता दिलाने में कार्यरत थे उन्हें भाकपा के मंच पर लाने का कार्य किया। इनमें से कई संगठनों को ये ज्ञात ही नहीं था के भारत में एक साम्यवादी दल की स्थापना हो चुकी है और एम. एन रॉय ने इन सभी को संगठित करने का कार्य किया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को सन 1928 में सोवियत नियंत्रित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) ने मान्यता प्रदान करि और सन 1928 से भाकपा सोवियत कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) के कार्यक्रम एवं नीतियों से प्रभावित हुई। अतः एम. एन. रॉय ने साम्यवादी दल को एक आंदोलन बनाने का प्रयास किया।[2] किन्तु सन 1920 से 1930 के दौर तक भाकपा का जनाधार ना के बराबर था और जनमानस खुद को भाकपा से कभी जोड़ नहीं पाए। मुख्य रूप से ये दौर गांधीवादी दौर था जिस वजह से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जनमानस के मध्य गहरी पैठ थी।

भाकपा के बनने से पहले दो प्रमुख मामले भारत में आते हैं जिनसे उस दौर के साम्यवादी विचारधारा मानने वाले व्यक्तियों को काफी लाभ पहुँचा, पहला था सन 1924 का कानपुर बोल्शेविक षड्यंत्र केस[3] और दूसरा मेरठ षड्यंत्र केस 1929।[4] ब्रिटिशर शासकों ने इन दोनों ही मामलों में साम्यवादियों पर कई तरह के केस चलाए और जेल में अत्याचार किए।

कानपुर षड्यंत्र केस में प्रमुख भूमिका निभाने वाले एम एन रॉय, एस ए डांगे, इत्यादि कई नेताओं के विरुद्ध विभिन्न मामलों के केस चला। जब ब्रिटिशर्स इन पर देशद्रोह और राजद्रोह का मुकदमा चलते हैं तब जनता के एक तबके का ध्यान इन साम्यवादियों पर जाता है और वे जनता की सहानुभूति पाने में सफल होते हैं और घर घर में इस मुद्दे पर चर्चा शुरू हो जाती है।[5]

वहीं दूसरी ओर 20 मार्च 1929 को हुए मेरठ षड्यंत्र केस में बहुत से साम्यवादियों को गिरफ्तार किया जाता है जिनमें एम एन रॉय,एस ए डांगे और कई अन्य बड़े नेता जेल में दाल दिए जाते हैं, जिससे पार्टी नेतृत्वविहीन हो गई। मेरठ षड्यंत्र केस 1933 तक चला और इसी साल सभी नेताओं को जेल से बरी कर दिया जाता है।[6]

जेल से बहार आते ही साम्यवादी दल के पदाधिकारी और बड़े नेता वापस साम्यवादी दल को वापस पुनर्गठित करते हैं। ये सभी नेता एम एन रॉय के नेतृत्व में साम्यवादी दल की एक केंद्रीय कमिटी बनाते हैं जिसे सन 1934 में सोवियत कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) के एक अंग के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।[7]

सन 1934 में ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर जो साम्यवादी रुझान वाले जो भी नेता थे उन्होंने कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना करि, जिसे भाकपा ने समाजवादी फाँसीवाद की संज्ञा दी थी।[8] भाकपा चाहती थी के सोवियत इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) इसे फासीवादी मानें लेकिन कोमिन्टर्न ने इसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली। कुल मिलाकर अपने विचारों को वैधानिक रूप देने के लिए भाकपा हमेशा कोमिन्टर्न से स्वीकृति खोजा करती थी।[9]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में गरीबों, पिछड़े तबको, महिलाओं इत्यादि उपाश्रित समूहों के लिए भी आवाज उठा रही थी और जाति प्रथा उन्मूलन का समर्थन, विकेन्द्रीयकरण का समर्थन इत्यादि विचारों को पूर्ण समर्थन देती थी। अचानक से 1930 से 35 के मध्य भाकपा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन करती है और इसे एक प्रगतिशील संगठन मानने लगती है और इनका रुझान कांग्रेस की नीतियों के समर्थन की ओर मुड़ जाता है। और भाकपा के कई सक्रिय सदस्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्ता भी ग्रहण कर लेते हैं। 1936–37 के मध्य भाकपा कांग्रेस समाजवादी दल से नजदीकियां बढ़ाती है। भाकपा जिन्हे कल तक समाजवादी फाँसीवादी कह रही थी, उनसे हाथ मिलती है और कांग्रेस समाजवादी दल का एक अंग बनती है। इन दोनों दलों के मध्य नजदीकियां बढ़ती हैं और वैचारिक समानता का बोध होता है। 1936 में कांग्रेस समाजवादी दल की एक बैठक में ये बात रखी जाती है के मार्क्सवाद–लेनिनवाद के आधार पर एक संयुक्त भारतीय सोशलिस्ट पार्टी की आवश्यकता है और इसका बनना जरूरी है। कांग्रेस समाजवादी दल की तीसरी बैठक में एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति बनाई जाती है और इसमें भाकपा के कई नेताओं और कारकर्ताओं को शामिल किया जाता है। लेकिन ये नजदीकियां अधिक दिनों तक नहीं चली।[10]

सन 1940 के कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में भाकपा ने एक दस्तावेज जारी किया जिसका शीर्षक था प्रोलेटेरियन पथ। इसमें 1939 के द्वितीय विश्व युद्ध का हवाला देते हुए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक सशस्त्र युद्ध का प्रस्ताव रखा गया। नतीजन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने एकतरफा फैसला लेने के कारण भाकपा को बाहर निकाल दिया। इस समय तक भाकपा को ये नहीं पता था के सोवियत और ब्रिटैन युद्ध में एक दूसरे के मित्र हैं, जैसे ही भाकपा को ये ज्ञात होता है वो तुरंत सशस्त्र विद्रोह का अपना प्रस्ताव वापस लेती है और ब्रिटैन के समर्थन में खड़ी हो जाती है। भारत में ब्रिटिश शासन भी भाकपा पर मेहरबान होता है और जितने भाकपा नेताओं पर केस चल रहे थे उन्हें बंद कर दिया जाता है और जो जो पाबंदियां ब्रिटिश शासन ने भाकपा पर लगाईं होतीं हैं वो सब हटा ली जातीं हैं। सोवियत और ब्रिटैन की नजदीकी बढ़ने के कारण भाकपा भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करना बंद कर देती है।[11] इतना ही नहीं भाकपा उस दौर में जितने भी ब्रिटिश औपनिवेश के विरुद्ध आंदोलन चल रहे थे उन सबका विरोध करती है और खासतौर से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश शासन के विरुद्ध नीतियों का मुखर विरोध करती है।[12] सोवियत और ब्रिटैन की मित्रता की वजह से भाकपा ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का विरोध किया और सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिन्द फ़ौज की निंदा करि। इन सब कृत्यों के पीछे भाकपा ने ब्रिटिश–सोवियत मित्रता नहीं, बल्कि भारत में व्याप्त कुछ सामाजिक कुरीतियों को बताया और कहा के भारतियों को तब तक आजादी नहीं मांगनी चाहिए जब तक वो इन सामाजिक कुरीतियों को दूर ना कर लें। नतीजन कल तक जो भाकपा ब्रिटिश विरोध कर रही थी अब उन दलों, संगठनों का विरोध करने लगी जो ब्रिटिश औपनिवेश विरोधी संघर्ष कर रहे थे और इसी क्रम में 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का भी भाकपा ने विरोध किया।[13] महात्मा गाँधी उस समय भी इतने परिपक्व थे के उन्होंने भाकपा को देशद्रोही की संज्ञा नहीं दी वरना आज तक साम्यवादी इस दाग को धो नहीं पाते। यहाँ से स्वतंत्रता प्राप्ति तक भाकपा खुद को स्वतंत्रता आंदोलन से दूर रखी और स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वालों का विरोध करती रही।

इसी दौर में भाकपा ने चालाकी से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अपने नाम की। भाकपा ने कांग्रेस के मजदूर संगठन आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। कांग्रेस ने दल की प्राथमिक सदस्ता से भाकपा के कार्यकर्ताओं, नेताओं को नहीं निकाला जिस वजह से आल इंडिया टेड यूनियन कांग्रेस में अधिकतर उम्मीदवार भाकपा से चुनकर आए और भाकपा ने कांग्रेस के मजदूर दल पर अपना वर्चस्व मजबूती से कायम कर लिया।[14] इससे उत्साहित होकर 1946 के प्रांतीय चुनावों में भागीदारी करि लेकिन पूरे देश की 1585 प्रांतीय विधान सभा की सीटों में से इन्हे केवल 8 सीटों पर ही जीत मिली। इस हार की प्रमुख वजह भाकपा की देश के प्रति नीतियां रहीं जो कभी एक जैसी नहीं थीं। भाकपा जिस मिट्टी पर बनी और खड़ी थी उस मिट्टी को पहचान नहीं पाई और ना ही उस देश की जनता को कभी प्रभावित कर पाई। कभी इसने कांग्रेस का विरोध किया, कभी कांग्रेस के साथ खड़ी नजर आई और दूसरे विश्व युद्ध ने भाकपा को जनता की नजरों से गिरा दिया जब वो देश के साथ ना होकर ब्रिटैन के पक्ष में खड़ी नजर आई। अपनी ढुलमुल और देशविरोधी नीतियों और सोवियत के कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) द्वारा संचालित होने के कारण भाकपा ने एक जैसा भारत हित में कोई सकारात्मक कदम नहीं उठाया, बल्कि वो देशकाल और परिस्थिति के हिसाब से अपनी नीतियों में परिवर्तन करती रही और देश विरोधी कार्य करने से भी पीछे नहीं हटी। एक समय जो भाकपा जनता के मध्य सहानुभूति अर्जित करने में सफल रही थी, 1942 के बाद वही जनता भाकपा से दूर हो गई और नतीजन प्रांतीय चुनावों में भाकपा को मुँह की खानी पड़ी।[15] भाकपा पर ये आरोप भी लगा के भारतीय राजनीति में जो साम्यवादी आंदोलन चल रहा था या एक दल के रूप में भाकपा जिस तरह अस्तित्व में आने का प्रयास कर रही थी वो भारत और भारतीयता दोनों से काफी दूर थे। और जब भाकपा ने स्वतंत्रता आंदोलन से खुद को अलग किया तब ये तथ्य खुलकर सामने आया के भाकपा की विभिन्न रणनीतियां दल खुद तय नहीं कर रहा था बल्कि सोवियत संघ में स्थापित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कोमिन्टर्न) भाकपा की भारत में नीतियां, कार्यक्रम एवं दिशा तय कर रहा था। और इसी कारण भाकपा की स्वंत्रता प्राप्ति की नीति, औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध आंदोलन की नीति इत्यादि विपरीत दिशा में जाती हुई नजर आती हैं और कई बार भाकपा देश हित विरोधी कार्य करने में भी पीछे नहीं रही।कुल मिलाकर भाकपा ने भारतीय परिस्थितियों के हिसाब से कोई नीतियां या कार्यक्रम नहीं बनाए बल्कि वो सोवियत के कोमिन्टर्न से आदेश लेती रही। विदेश से आयातित नीतियां भारत के लिए कभी सुलभ नहीं रहीं और भाकपा ने स्वतंत्रता संघर्ष को कमजोर करती नजर आई।[16]

इतना सब कुछ होने के बाद भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भाकपा को निष्कासित नहीं किया और जैसा ऊपर कहा गया, इसके कई कार्यकर्ता एवं नेता कांग्रेस के मजदूर संगठन पर अपना वर्चस्व बना लेते हैं। इन्हे जो भी मत प्राप्त हुए वो साम्यवादी या भाकपा की नीतियों के कारण नहीं बल्कि कांग्रेस की सदस्ता की वजह से प्राप्त हुए। और इसी कारण भाकपा दो मुख्य खेतिहर मजदूर आंदोलन को हवा देने में सफल होती है। पहला, बंगाल का तेभागा आंदोलन और दूसरा आंध्र प्रदेश का श्रीकाकुलम आंदोलन।

तेभागा आंदोलन

सन 1946 में बंगाल में तेभागा आंदोलन होता है। आंदोलन मुख्यतः बंगाल के खेतिहर मजदूरों के द्वारा किया गया था, जिन्हें

बरगादार कहा जाता था जो जमींदार की जमीन पर मजदूरी करके फसल उगाते थे और जिसका बड़ा हिस्सा इन जमींदारों के पास जाता था जिन्हे जोटेदार कहा जाता था। बरगरदार समुदाय में बहुसंख्यक मुस्लिम थे और जोटेदार हिन्दू समुदाय से आते थे जिन्हें बंगाल में भद्रपुरुष कहा जाता था। भाकपा ने भद्रपुरुष पर जमीन हड़पने और सम्पत्ति इकट्ठा करने का आरोप लगाया और बरगरदार समुदाय को भड़काने का कार्य किया।[17] हालाँकि आल इंडिया मुस्लिम लीग बंगाल में अच्छी स्थिति में थी और मुस्लिम जनसंख्या भी 54: थी लेकिन अलामा इक़बाल और अन्य मुस्लिम लीग के नेताओं का ध्यान बंगाल और बंगाली मुस्लिम पर नहीं था बल्कि वो पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार मुस्लिम्स पर ज्यादा ध्यान दे रही थी[18] और क्योंकि बंगाल के मुस्लिम बरगरदार (गरीब तबका) से आते थे, यहाँ भाकपा को एक अवसर मिला और उसने जोतदारों के विरुद्ध बरगरदारों को बंगाल में लामबंद किया ताकि प्रदेश में किसान आंदोलन के नाम पर अपना जनाधार बढ़ा सके।[19] सनद रहे के ये भाकपा ही थी जिसने सन 1937 से 1947 तक मुस्लिम लीग को एक अलग संप्रभु राष्ट्र की मांग और निर्माण के लिए लगातार प्रेरित किया और उसके लिए अनवरत प्रयास भी किए। अतः ये कहना अतिश्योक्ति ना होगी के भाकपा ने धर्म आधारित भारत विभाजन में एक अहम भूमिका अदा करि।[20]

बंगाल में खेतिहर मजदूर के मध्य रोष और उससे उपजे तेभागा आंदोलन, मुस्लिम लीग की बंगाली मुस्लिम्स के प्रति उदासीनता और दो राष्ट्र सिद्धांत के आधार पर मुस्लिम लीग को एक अलग राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित करना[21] इत्यादि भारत की एकता, अखंडता के विरुद्ध एक प्रयास था। किन्तु सत्ता प्राप्ति के लिए भाकपा बहुसंख्यक मुस्लिम समुदाय के मध्य धीरे धीरे पैठ बनाने में सफल रही और स्वतंत्रता के पश्चात बंगाल की राजनीति में 60 के दशक में सत्ता पर काबिज हुई, जहाँ 30 वर्षों तक शासन पर अपना वर्चस्व बनाए रखा।

तेभागा का अर्थ होता है तीन भाग बंगाल के खेतिहर मजदूरों (बरगरदार, जिनमें मुस्लिम बहुसंख्यक थे), ने जोटीदारों (जिनमे बहुसंख्यक हिन्दू थे) के विरुद्ध आंदोलन किया और मांग रखी के वो खेती में जितना भी उत्पादन कर रहे हैं उसका दो तिहाई भाग अपने पास रखेंगे और एक तिहाई हिस्सा जोटीदारों को देंगे क्योंकि भूमि भले ही जोटीदारों की हो, मेहतन हम (बरगरदार) कर रहे हैं। कई विचारक इसे एक जायज मांग मानते हैं, ये वाद विवाद का विषय हो सकता है लेकिन जिस तरह भाकपा ने आंदोलन को हवा दी उसका प्रमुख उद्देश्य मुस्लिम लीग द्वारा उपेक्षित बरगरदारी समुदाय की सहानुभूति प्राप्त करना था, एवं इस कारण ये आंदोलन कई जगहों पर बरगरदारों द्वारा जोटीदारों के विरुद्ध एक हिंसक रूप लेता नजर आया। भाकपा ने इस आंदोलन को बरगरदार बनाम जोटीदार तक सीमित ना रखते हुए, इसे हिन्दू–मुस्लिम रंग देने का प्रयास भी किया ताकि मुस्लिम बहुसंख्यक जनता मुस्लिम लीग को छोड़कर भाकपा के पाले में आ जाए।[22]

1943 के बंगाल के अकाल के दौरान भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने सुंदरवन क्षेत्र के बारगरदारों को राहत प्रदान की। सितंबर 1946 में बंगीय प्रादेशिक किसान सभा ने तेभागा आंदोलन शुरू करने का फैसला किया। काकद्वीप, सोनारपुर, भांगर और कैनिंग में तेभागा आंदोलन शुरू हो गया। काकद्वीप और नामखाना आंदोलन के प्रमुख केंद्र थे। आंदोलन का मुख्य उद्देश्य बरगारदारों को बटाई की हिस्सेदारी में सुधार करना था। यह आंदोलन 1950 तक जारी रहा, जब बरगदरी अधिनियम बनाया गया। अधिनियम ने इनपुट प्रदान करते समय उपज के दो–तिहाई हिस्से के लिए बरगारदारों के अधिकार को मान्यता दी। 1946–1950 के दौरान[24] परगना जिले के कई हिस्सों में तेभागा आंदोलन के कारण बरगदरी अधिनियम लागू हुआ। हालांकि 1950 के बरगदरी अधिनियम ने बरगादारों के अधिकारों को उनके द्वारा जोती गई भूमि से फसलों के एक उच्च हिस्से के रूप में मान्यता दी, लेकिन इसे कभी लागू नहीं किया गया।[23]

आंध्र प्रदेश (तेलंगाना) आंदोलन (1946–1951)

आंध्र प्रदेश के आंदोलन का प्रमुख कारण निज़ाम के पूर्व हैदराबाद राज्य में प्रशासन की सामंती संरचना थी। जागीर क्षेत्र में, जागीरदार के एजेंट जो बिचौलिए थे, भूमि कर एकत्र करते थे। जागीरदार और उसके एजेंटों द्वारा बहुत अत्याचार किया गया। वे वास्तविक खेतिहर मजदूरों पर तरह–तरह के कर वसूलने के लिए स्वतंत्र थे। 1949 में जागीरदारी प्रथा के समाप्त होने तक शोषण की यह स्थिति प्रचलन में रही। दूसरी ओर खालसा भूमि या रैयतवारी व्यवस्था भी शोषक थी, हालांकि खालसा व्यवस्था में शोषण की गंभीरता थोड़ी कम थी। खालसा गाँवों में देशमुख और देशपांडे बिचौलियों के रूप में काम करते थे।[24]

प्रशासन की दोनों व्यवस्थाओं, यानी जागीर और खालसा में निज़ाम द्वारा नियुक्त मध्यस्थों द्वारा किसानों का शोषण किया जाता था। उच्च कर, रिकॉर्ड के साथ धोखाधड़ी और शोषण के परिणामस्वरूप गरीब खेतिहर मजदूर में असंतोष पैदा हुआ। जहाँ निज़ाम के मध्यस्थ हिन्दुओं के अमीर वर्ग से आते थे और खेतिहर मजदूरों में बहुसंख्यक संख्या ट्राइबल समुदाय से थी। निज़ाम शासन ने ऐसी व्यवस्था करि थी जिसमें हिन्दू ही हिन्दू का शोषण कर रहा था।

इस तरह की वसूली वैट्टी प्रणाली के रूप में जानी जाती थी, जिसके तहत एक जमींदार या देशमुख अपने प्रथागत अनुचरों में से एक परिवार को अपनी जमीन पर खेती करने और एक या दूसरे अन्य कार्यों को करने के लिए मजबूर कर सकता था, जिनमें घरेलू, कृषि या आधिकारिक, स्वामी के प्रति कार्य एक दायित्व के रूप थोपे जाते थे।[25]

इस प्रकार इस व्यवस्था में दास प्रथा प्रचलित थी। इस प्रणाली को भगेला के नाम से जाना जाता था। भगेला ज्यादातर आदिवासी जनजातियों से थे जो कर्ज से बंधे हुए थे। भगेला प्रथा के अनुसार, जिस काश्तकार ने जमींदार से कर्ज लिया था, वह कर्ज चुकाने तक उसकी सेवा करने के लिए बाध्य था। अधिकांश मामलों में भगेला को पीढ़ियों तक जमींदार की सेवा करनी पड़ती थी।[26]

हैदराबाद राज्य के लिए भूमि अलगाव के लिए कोई नई बात नहीं थी। 1910 से 1940 के बीच भूमि बेदखली की आवृत्ति में वृद्धि हुई। एक ओर, गैर–कृषक शहरी लोगों, जिनमें ज्यादातर ब्राह्मण, मारवाड़ी और मुसलमान थे, के कब्जे वाली भूमि में वृद्धि हुई और दूसरी ओर आदिवासी किसान सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूरों की स्थिति में सिमट गए।[27]

भूमि के बढ़ते अलगाव के परिणामस्वरूप कई वास्तविक कब्जेदार या कृषकों को वसीयत में काश्तकारों, बटाईदारों या भूमिहीन मजदूरों तक सीमित किया जा रहा था। वास्तव में, जहां धनी पट्टादारों के पास प्रबंधन करने के लिए बहुत बड़ी जोत थी, वे एक निश्चित मात्रा में सिंचित भूमि रखने के लिए प्रवृत्त थे और दिहाड़ी पर मजदूरों को खेती करने के लिए रखा करते थे। इसके साथ ही उनकी अधिकांश सूखी बेजान भूमि या तो भगेला सर्फ़ों को या कास्तकारों को किराए पर बहुत अधिक उपज दाम पर सौंप दी जाती थी।[28]

तेलंगाना किसानों के मध्य अशांति अचानक पैदा नहीं हुई थी। यह लगभग तीन से चार दशक के शोषण का परिणामस्वरूप हुई। कृषि अर्थव्यवस्था में काफी बदलाव आने के कारण 1930 के दशक तक किसानों की दयनीय स्थिति अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी थी। तेलंगाना किसान आंदोलन को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) द्वारा संचालित किया गया था। इसे

कम्युनिस्टों द्वारा की गई क्रांति कहा जाता है। भाकपा ने सन 1936 में अनुकूल परिस्थितियां देखकर तेलंगाना में काम करना शुरू किया, परिणामस्वरूप प्रोफेसर एन.जी. रंगा ने तेलंगाना में क्षेत्रीय स्तर के किसान संगठन की स्थापना की।[29]

यह क्षेत्रीय संगठन भाकपा के एक अंग अखिल भारतीय किसान सभा से संबद्ध था। तीन या चार वर्षों की अवधि के भीतर, (लगभग1940 तक), भाकपा ने पूर्व हैदराबाद राज्य में अपनी जड़ें जमा ली थीं। 1944 से 1946 की अवधि के दौरान, हैदराबाद के कई जिलों में कम्युनिस्ट गतिविधियों में वृद्धि हुई। इसलिए, तेलंगाना में किसान आंदोलन शुरू करने के लिए एक ढांचा तैयार किया गया था। अगली घटना जो हैदराबाद में हुई वो तेलंगाना में 1946 का अकाल था जिस कारण सभी फसलें बर्बाद हो गईं और अनाज एवं पशु चारे तक की उपलब्धता का संकट पैदा हो गया। इसके साथ ही भोजन, चारा और जीवन की अन्य आवश्यकताओं की कीमतें भी तीव्र गति से बढ़ गईं। यह काश्तकारों और बटाईदारों के लिए संकट भरा दौर था। दरअसल, वर्ष 1946 ने किसान संघर्ष के लिए एक उपजाऊ जमीन तैयार करि। इसी क्रम में जुलाई 1946 में किसानों ने सरकारी आदेशों का विरोध किया और भाकपा के झंडे तले किसानो द्वारा विद्रोह किया गया। भाकपा ने किसानों को लामबंद करने का लक्ष्य रखा।[30] इसने निचले किसानों की मांगों को प्रचारित करने के लिए एक अभियान चलाया और ये अभियान हैदराबाद के निजाम के विरुद्ध ना होकर निजाम द्वारा नियुक्त जागीर और खालसा के विरुद्ध ज्यादा था जो हिन्दू समुदाय से आते थे।[31]

भाकपा का दूसरा सम्मेलन मार्च 1948 में आयोजित किया गया। इसने तेलंगाना में किसान आंदोलन को क्रांतिकारी मोड़ देने का संकल्प लिया। बाद में शोषित ट्राइबल किसानों को एक सेना के रूप में संगठित किया गया एवं जागीर और खालसा के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध छेड़ा गया। निजाम ने भी जवाबी कार्यवाही करि जिसमें कई हजार ट्राइबल किसान या तो मारे गए या हताहत हुए, साथ ही भाकपा के गुरिल्ला युद्ध के कारण भी कई हजार जागीर और खालसा से जुड़े लोग भी मारे गए। इसी क्रम में भाकपा नियंत्रित किसान संघर्ष समिति का 300 से 400 गाँव पर नियंत्रण स्थापित हो गया और निज़ाम एवं जागीर–खालसा का वर्चस्व खत्म हो गया, इन सभी गाँव में भूमि सुधार की नीतियां भाकपा लागू करती है और जमीन ट्राइबल समुदायों के नाम हो जाती है। ये एक दो समुदायों और राजनैतिक विरोधियों के मध्य युद्ध की स्थिति थी। जिसके फलस्वरूप इस सशस्त्र किसान दस्ते ने सन 1948 तक 3000 गांव के करीब 16000 वर्गमील भूमि को जमींदारी व्यवस्था से मुक्त कराकर गांववासियों में भूमि का वितरण कर दिया, नतीजन निज़ाम और ज्यादा आक्रामक हुआ और कई जगहों पर हिंसक युद्ध जैसी बनी।[32]

इस स्थिति को देखते हुए भारतीय सेना ने हैदराबाद में कार्यवाही करि क्योंकि दोनों वर्गों द्वारा हैदराबाद राज्य में युद्ध जैसी पैदा कर दी थी। इन दोनों आंदोलनों का भारतीय सेना द्वारा दमन किया गया और शांति बहाली करि गई। अंततः 1951 में भाकपा ने इस आंदोलन को आधिकारिक रूप से वापस ले लिया, कुल मिलाकर इस आंदोलन का भी कोई निष्कर्ष नहीं निकला, जैसे ये शुरू किया गया था वैसे ही उसी स्थिति में इस आंदोलन को समाप्त करने की घोषणा भाकपा ने करि।[33]

संविधान सभा, भाकपा और स्वतंत्र भारत के विरुद्ध षड्यंत्र

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भाकपा ने संविधान निर्माण के लिए गठित संविधान सभा की आलोचना करि और इसे गैर प्रजातांत्रिक होने की संज्ञा दी। इनका मानना था के ये संस्था चुनी हुई नहीं है और ना ही इसमें समान प्रतिनिधित्व है। सिर्फ कुछ दलों ने मनमानी करते हुए देश के संविधान निर्माण का निर्णय स्वयं किया है। अतः इसको अल्पमत की संविधान सभा की संज्ञा देते हुए बहिष्कार करते हैं।[34]

उस समय पी. सी जोशी भाकपा के महासचिव थे। पी. सी. जोशी ये मानते थे के सत्ता का हस्तांतरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और ये होना ही था इसलिए भाकपा को भारत, संविधान सभा, और स्वतंत्रता का विरोध नहीं करना चाहिए और समय की धारा के साथ चलना चाहिए तथा अपने विचारों पर पुनर्मंथन करना चाहिए। किन्तु पी सी जोशी के विचार को बाकी भाकपा के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने पूर्ण रूप से नकार दिया। इसके बाद बी. टी रणदिवे के नेतृत्व में भाकपा का एक खेमा ये तर्क देता है के भारत में जनविरोध जोर पकड़ रहा है अतः भाकपा के पास एक अवसर है के वो सभी साम्यवादी विचार के प्रति सहानुभूति रखने वाले, खेतिहर मजदूर, अन्य मजदूर वर्ग, गरीब एवं बेरोजगार वर्ग, सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग इत्यादि को संगठित करके पूरे भारतीय राष्ट्र के विरुद्ध एक सशस्त्र संघर्ष और विद्रोह के द्वारा सत्ता पर कब्जा करने का प्रयास करे। बी.टी रणदिवे 1947 में मिली स्वतंत्रता को असली स्वतंत्रता नहीं मानते थे और भाकपा को सत्ता दिलाने के लिए ये प्रस्ताव पारित किया, जो देश विरोधी था। रणदिवे चीन की माओवादी क्रांति से अत्यंत प्रभावित थे और भाकपा के कई नेताओं ने तेलंगाना आंदोलन की तुलना चीन की माओवादी क्रांति से करि। रणदिवे और भाकपा के अनुसार भारत में भी चीन जैसी स्थिति है और ये सुनहरा अवसर है जब भारत की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध चीन की क्रांति के तर्ज पर मजदूरों, पिछड़े वर्गों, गरीब पिछड़े किसानों और बेरोजगार वर्ग को एकजुट करके भारत के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करनी चाहिए,[35] जिसे आन्ध्रा लाइन की संज्ञा दी गई। सन 1948 में भाकपा की कलकत्ता बैठक में रणदिवे ने भारत राज्य के विरुद्ध युद्ध का प्रस्ताव रखा और इसे सर्वसम्मति से पास कर दिया गया।[36] किन्तु जब भारतीय सेना ने तेलंगाना आंदोलन को खत्म किया तब भाकपा को भारतीय राज्य के शक्तिशाली होने का आभास होता है और भाकपा जो चीन की क्रांति से उत्साहित थी, उसके उत्साह को एक गहरी चोट पहुंचती है और उसे भारतीय सेना की शक्ति का ज्ञान होता है। इसके पश्चात सशस्त्र विद्रोह के मुद्दे पर भाकपा दो खेमों में बंट गया एक जो पी सी जोशी का समर्थन करते हैं, दूसरे जो रणदिवे के मार्गदर्शन में चीन की क्रांति की तरह भारत में भी सशस्त्र विद्रोह करना चाह रहे थे।[37] इस समस्या को सुलझाने के लिए भाकपा का दोनों खेमा मास्को जाता है और वहाँ की कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से इनकी वार्ता होती है। इस वार्ता के पश्चात तीन दस्तावेज तैयार होते हैं।[38] इन तीनों दस्तावेजों ने कहा के भारत एक निर्भर (आत्मनिर्भर नहीं) और अर्ध–औपनिवेशिक देश है, जहाँ बुर्जुआ वर्ग, पूंजीपति वर्ग और जमींदारों का वर्चस्व है। इसी दस्तावेज में भाकपा ने कहा के वर्तमान भारत की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं में राष्ट्रवादी और उदारवादी तत्वों का वर्चस्व बढ़ रहा है जिसका विरोध किया जाना चाहिए।[39] मास्को से वापस आने पर अजय घोष ने भाकपा की कमान सम्हाली और भारतीय सेना की ताकत को देखते हुए मध्यमार्ग अपनाने का सुझाव दिया और भाकपा के सशस्त्र विद्रोह का अभियान त्याग देना चाहिए। भाकपा को भारतीय प्रजातंत्र में विश्वास रखते हुए चुनावी राजनीति का सहारा लेना चाहिए। और चुनावों के जरिए सत्ता प्राप्ति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए ताकि चीन/सोवियत राज्य की तर्ज पर भारत को एक ना एक दिन साम्यवादी राज्य बनाया जा सके। इसके बाद भाकपा सन 1964 में दो भागों में बंट जाती है। भाकपा का एक तबका जब नेहरू को सोवियत संघ की ओर झुकाव लेते देखता है तब वो नेहरू के समर्थन में उत्तर आता है लेकिन एक खेमा अपने पुराने रुख पर कायम रहता है। पी सी जोशी, अजय घोष और इस इ डांगे खेमा नेहरू समर्थक हो

जाता है लेकिन दूसरा खेमा चीन की क्रांति और भारत में वर्चस्व बनाने की नीति पर कायम रहता है। सन 1962 के भारत–चीन युद्ध के दौरान भारत का विरोध करने वाले भाकपा के नेताओं को जेल हो जाती है ये खेमा पी सी जोशी, डांगे और अजय घोष के भारत–चीन युद्ध के समय लिए गए रुख का भी विरोध कर रहा था। सन 1964 में प्रमुखतया इसी आधार पर भाकपा में विभाजन होता है और एक न्य साम्यवादी दल बनता है भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)।[40]

भारत में वामपंथी (साम्यवादी आंदोलन) कभी एक जैसी नीति लेकर नहीं चला, ना ही साम्यवादी कार्यकर्ताओं और नेताओं ने भारतीयता को कभी अपनाया। कभी वो सोवियत इंटरनेशनल से मार्गदर्शन लेते रहे तो कभी चीन की क्रांति से प्रभावित हुए। साम्यवादी दल भारतीय राज्य, स्वतंत्रता, समाज और सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था को समझने में असफल रहे। और वर्तमान भारत में आज भी साम्यवादी दल भारतीयता से दूर हैं।

संदर्भ सूची

1. Anil Rajimwale. "Foundation of the Communist Party of India (CPI) in 1925: product of genuine national and working class movements," Mainstream Weekly,2022:58(39). (September.12). Accessed via: http://www.mainstreamweekly.net/article9916.html. Dated. 10/9/2022.
2. Ibid.
3. Ralhan OP. (ed.) *Encyclopedia of Political Parties* (New Delhi: Anmol Publications)., 1998, 336.
4. Devendra Singh. *Meerut Conspiracy Case and the Communist Movement in India, 1929-35* (USA: University of Michigan Press), 1999.
5. Ralhan, O.P. Opp.Cite.
6. Devendra Singh. Opp.Cite.
7. Anil Rajimwale. Opp.Cite.
8. Aleya Mousami Sultana, "Left Parties in India,". Accessed Via: https://cbpbu.ac.in/userfiles/file/2020/STUDY_MAT/POL_SC/LEFT%20PARTIES%20(1).pdf. Dated. 16/3/2021. p. 16.
9. Ibid. see also, Anil Rajimwale. Opp.Cite.
10. Ibid.
11. Ralhan OP. (ed.) *Encyclopedia of Political Parties – India – Pakistan – Bangladesh – National -Regional – Local*. (Vol. 24). *Socialist Movement in India*. (New Delhi: Anmol Publications), 1997, 82.
12. Roy Subodh. Communism in India – Unpublished Documents 1925-1934. (Calcutta: National Book Agency),1988:338-339, 359-360.
13. Nikhil Chakravartty. "Communists and 'Quit India' Struggle," Mainstream Weekly,2008:46(34):10. Accessed Via: https://www.mainstreamweekly.net/article867.html. Dated. 9/2/2019.
14. Ibid. see also, Ralhan, O.P. Opp. Cite and Anil Rajimwale. Opp. Cite.
15. Koteswara Rao MVS. Communist Parties and United Front – Experience in Kerala and West Bengal. (Hyderabad: Prajasakti Book House), 2003.
16. Ralhan, O.P. Opp. Cite. see also, Anil Rajimwale. Opp. Cite
17. Asok Majumdar. The Tebhaga Movement : Politics of Peasant Protest in Bengal 1946-1950. New Delhi: Aakar Books, 2011, 13.
18. Salil Misra. "The unusual story of Bengal,", 2021. (November. 21). Accessed Via: https://www.tribuneindia.com/news/comment/the-unusual-story-of-bengal-340782. Dated. 12/1/2022.
19. Bhattacharya Jayant. *Tevaga of Bengal, struggle of Tevaga* (in Bengali). (Calcutta: National Book agency),1996:39, 72, 98.
20. Habib Manzer. "The Communist Party And The Muslim League: 1937-1947," "Proceedings of the Indian History Congress,",2003:64:1036-1048. Accessed Via: https://www.jstor.org/stable/44145531. Dated. 16/9/2020.
21. Ibid.
22. Bhattacharya Jayant. *Tevaga of Bengal, struggle of Tevaga* (in Bengali). (Calcutta: National Book agency). pp. 39, 72, 98. See also, Susnata Das (2013), "Marginal Communities in Peasant Movement: The Sharecroppers Struggle for TEBHAGA in North Bengal,"(1946-47) Proceedings of the Indian History Congress,1996:74:640-651. Accessed Via: https://www.jstor.org/stable/44158867. Dated. 16/1/2020.
23. Ibid.
24. Marhews Rohan D. "The Telengana Movement: Peasant Protests in India, 2011. 1946-51. (July.1). Accessed Via:https://www.ritimo.org/The-Telengana-Movement-Peasant-Protests-in-India-1946-51. Dated. 12/6/2019. see also, M.S.A. Rao (2018). Peasant Colonization and Tribal Alienation in Andhra Pradesh. (Hyderabad: Ritunestham Press). see also, Pagadam.Nagaraju (2020), "Role of Communists in the Peasant Movement of Andhra," Volume- 9, Issue- 9, (September). Accessed Via: https://www.worldwidejournals.com/global-journal-for-research-analysis-GJRA/recent_issues_pdf/2020/September/role-of-communists-in-the-peasant-movements-of-andhra_September_2020_6636310091_4607947.pdf. Dated. 16/1/2021.
25. Ibid.
26. Ibid.
27. Ibid.
28. Ibid.
29. Ibid.
30. Ibid.
31. Mike Thomson. "Hyderabad 1948: India's Hidden Massacre,", 2013. (September. 24). Accessed Via: https://www.bbc.com/news/magazine-24159594. Dated. 11/10/2019.
32. Marhews Rohan D. Opp. Cite, M.S.A. Rao. Opp. Cite. Pagadam.Nagaraju. Opp. Cite.
33. Prasad, Dr. SN. "Operation Polo: The Police Action Against Hyderabad, 1948. Historical Section," Ministry of Defence, Government of India; (Delhi: Manager of Publications, Government of India), 1972, 75.
34. Amrit Varsha. "Nehru and the Communists: Towards the Constitution Making," Proceedings of the Indian History Congress,2011:72:1:740-752.
35. Bipan Chandra. "P.C. Joshi: A Political Journey," Mainstream Weekly, 2007. (December. 25). Accessed Via:https://www.mainstreamweekly.net/article503.html. Dated. 16/7/2019.
36. Ibid.

37. Sen Mohit. A Traveller and the Road: The Journey of an Indian Communist. (New Delhi: Rupa Co.), 2003, 81.
38. Ibid.
39. Ibid.
40. Sharma TR. "The Indian Communist Party Split of 1964: The Role of Factionalism and Leadership Rivalry," Studies in Comparative Communism. 11 (4, Winter), 1978, 388-409.